जैन साहित्य

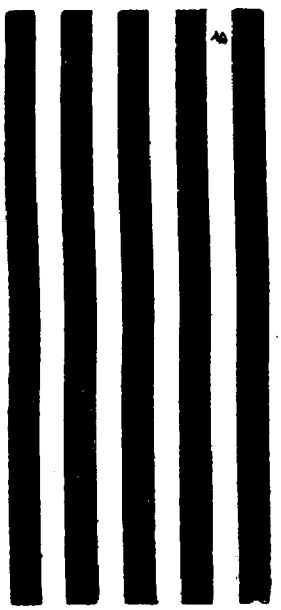

अगरचन्द नाहटा

जैन धर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है । उसके प्रवर्तक और प्रचारक 24 तीर्थंकर सभी इस भारत-भूमि में ही जन्मे, साधना करके विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया और जनता को धर्मोपदेश देकर भारत में ही निर्वाण को प्राप्त हुए। जैन परम्परा के अनुसार भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने युगलिक धर्म का निवारण करके असी शास्त्र की मसी लिख कृषि, तथा विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देकर भारतीय संस्कृति को एक नया रूप दिया। वे महान अविष्कर्त्ता थे । उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को जो लिपि सिखाई वह भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी के नाम से प्रसिद्ध हुई और छोटी पुत्री सुन्दरी को अंक आदि सिखाये, जिससे गणित का विकास हुआ। पुरुषों की 72 तथा स्त्रियों की 64 कलाएँ या विद्याएँ भगवान ऋषभदेव की ही विशिष्ट देन हैं। भगवान ऋषभदेव के बड़े पुत्र भरत 6 खण्डों को विजय कर चक्रवर्ती सम्राट बने, और उन्हीं के नाम से इस देश का नाम भारत प्रसिद्ध हुआ। व्यावहारिक शिक्षा देने के बाद भगवान ऋषभदेव ने पिछली आयु में सन्यास ग्रहण किया और तपस्या तथा ध्यान आदि।

साधना से आत्मिक ज्ञान प्राप्त किया । उस परिपूर्ण और विशिष्ट ज्ञान का नाम केवल 'ज्ञान' जैन धर्म में प्रसिद्ध है। इसके बाद उन्होंने आध्यात्मिक-साधना का मार्ग प्रवर्तित किया, आत्मिक उन्नति और मोक्ष का मार्ग सबको बतलाया इसीलिए भगवान ऋषभदेव का जैन साहित्य में सर्वाधिक महत्व है यद्यपि उनको हुए असंख्यात वर्ष हो गये, इसलिए उनकी वाणी या उपदेश तो हमें प्राप्त नहीं हैं, पर उनकी परम्परा में 23 तीर्थंकर और हुए। उन्होंने भी साधना द्वारा केवल ज्ञान प्राप्त किया और सभी केवलियों का ज्ञान एक जैसा ही होता है। इसलिये ऋषभदेव की ज्ञान की परम्परा अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर की वाणी और उपदेश के रूप में आज भी हमें प्राप्त है। समस्त जैन साहित्य का मूल आधार वही केवल ज्ञानी–तीर्थंकरों की वाणी ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनतम जैन साहित्य—

भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरों के मुनियों का जो विवरण आगमों में प्राप्त है, उससे मालूम होता है कि 'पूर्वों' का ज्ञान उस परम्परा में चालू था। आगे चलकर उनको 14 पूर्वों में विभाजित कर दिया मालूम देता है। अतः भगवान महावीर में समय और उसके कई शताब्दियों तक 14 पूर्वों का ज्ञान प्रचलित रहा। 'क्रमशः' उसमें क्षीणता होती गई और करीब 2 हजार वर्षों से 14 पूर्वों के ज्ञान की वह विशिष्ट परम्परा लुप्त सी-हो गयी।

भगवान महावीर ने जो 30 वर्ष तक अनेक स्थानों में विचरते हुए धर्मोपदेश दिया, उसे अनेक प्रधान गौतम आदि गणधरों ने सूत्र रूप में निबद्ध कर दिया। वह उपदेश 12 अंग सूत्रों में विभक्त कर दिया गया जिसे 'द्वादशाँग गणि-पिट्टक' कहा जाता है। इनमें से 12वां दृष्टिवाद अंग सूत्र जो बहुत बड़ा और विशिष्ट ज्ञान का स्तोत्र था। पर वह तो लुप्त हो चुका है। बाकी "अंग सूत्र करीब हजार वर्ष तक मौखिक रूप से प्रचलित रहे, इसलिए उनका भी बहुत-सा अंश विस्मृत हो गया। वीर निर्वाण संवत् 980 में देवर्धि गणि क्षमाश्रमण ने सौराष्ट्र की वल्लभी नगरी में उस समय तक जो अंग मौखिक रूप से प्राप्त थे उनको लिपिबद्ध कर दिया। अतः प्राचीनतम और जैन साहित्य में रूप के वे 11 अंग और उनके उपांग तथा उनके आधार पर बने हुए जो भी आगम आज प्राप्त हैं उन्हें प्राचीनतम जैन साहित्य माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में तो ये अंग सूत्रादि लुप्त हो गये माना जाता है, पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय में वे ही आगम ग्रंथ प्राप्त और मान्य हैं।

प्राचीनतम जैन साहित्य—

भगवान महावीर के बाद कई जैनाचार्यों ने बहुत-से सूत्र ग्रंथ बनाये, पर उन सूत्रों में से 2-4 को छोड़कर बाकी में रचियता का नाम नहीं मिलता उनमें से रचियता के नामवाले ग्रन्थों में सबसे पहला सूत्र है दशवैकाल्पिक, जिनमें जैन मुनियों का आचार संक्षेप में वर्णित है। इस सूत्र के रचियता राय्यंभव सूरि महावीर निर्वाण के 98 वर्ष में स्वर्गस्थ 5 वें पक्षधर हुए हैं। इसके बाद आचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली ने वृहदकल्प, व्यवहार और दशाश्रुत स्कन्ध नामक उछेद सूत्रों की रचना की। 10 आगमों की नियुक्तियाँ रूप प्राचीन आत विटर टीकाएँ भी भद्रबाहु रचित हैं। पर आधुनिक विद्वानों की राय में उनके कर्त्ता द्वितीय भद्रबाहु पीछे हुए हैं। इसके बाद स्यामाचार्य ने पत्रवणा सूत्र बनाया। इस तरह समय-समय पर अन्य कई आचार्यों और विद्वानों ने ग्रंथ बनाकर जैन साहित्य की अभिवृद्धि की।

संस्कृत में जैन साहित्य —

भगवान महावीर ने तत्कालीन लोकभाषा अर्द्ध-मागधी में उपदेश दिया था और उसी परम्परा को जैनाचार्यों ने भी 500 वर्षों तक तो बराबर निभाया। अतः उस समय तक का समस्त जैन साहित्य प्राकृत भाषा में ही रचित है। इसके बाद संस्कृत के बढ़ते हुए प्रचार से जैन विद्वान भी प्रभावित हुए और उन्होंने प्राकृत के साथ-साथ संस्कृत में भी रचना करना प्रारम्भ कर दिया। उपलब्ध जैन साहित्य में सबसे पहला संस्कृत ग्रंथ आचार्य उमास्वाति रचित 'त्वार्थ' सूत्र माना जाता है, जो विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी की रचना है। इसमें छोटे-छोटे सूत्रों के रूप में जैन सिद्धान्तों का बहुत खूबी से संकलन कर दिया गया है। यह 10 अध्यायों में विभक्त है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय इसे समान रूप से मान्य करते हैं, और दोनों सम्प्रदायवालों की इस पर सही टीकाएँ प्राप्त हैं। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार तो तत्थ्यार्थका सूत्र की भाष्य तो स्वय उमास्वाति ने ही रची है। सूत्र ग्रन्थों की परम्परा का यह महत्वपूर्ण संस्कृत जैन ग्रन्थ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद तो समंतभद्र' सिद्धसेन, पूज्यमाद, अकलंक हरिभद्र आदि श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के विद्वानों द्वारा दार्शनिक, न्याय ग्रंथ और टीकाएँ आदि संस्कृत में बराबर रची जाती रही। और आगे चलकर तो संस्कृत में काव्य, चरित्र और सभी विषयों के जैन ग्रन्थ संस्कृत में खूब लिखे गये।

अपभ्रंश एवं लोकभाषाओं में जैन साहित्य--

जैन भाषा में निरन्तर परिवर्तन होता ही रहा है अतः प्राकृत भाषा अपभ्रंश के रूप में परिवर्तित हो गयी। अपभ्रंश में भी जैनों ने ही सर्वाधिक साहित्य का निर्माण किया है। वैसे तो प्राचीन नाटकों में भिन्न जाति एवं साधारण पुरुषों और स्त्रियों की भाषा की रचनाऐं 8 वीं 9वीं शताब्दी से मिलने लगती हैं, और 17 वीं शताब्दी तक छोटी-बड़ी सैंकड़ों रचनाएँ जैन कवियों की रचित आज भी प्राप्त है। कवि स्वयंभू पुष्पदंत, धनपाल आदि अपभ्रंश के जैन महाकवि हैं। जैनेतर रचित ग्रंथ अपभ्रंश में नहीं मिलता क्योंकि उन्होंने प्रारम्भ से ही संस्कृत को प्रधानता दी थी; अतः उनका सर्वाधिक साहित्य संस्कृत में है।

अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं का विकास हुआ। 13वीं शताब्दी से राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी में साहित्य मिलने लगता है। यद्यपि 15वीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रभाव उन रचनाओं में पाया जाता है। उस समय तक राजस्थान और गुजरात में तो एक ही भाषा बोली जाती थी, जिसे राजस्थान वाले पुरानी राजस्थानी एवं गुजरातवाले जूनी-गुजराती कहते हैं अतः कई विद्वानों ने उसे 'मरु-गुर्जर' भाषा कहना उचित अधिक माना है। आगे चलकर राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी में प्रान्तीय भेद अधिक स्पष्ट होता गया। और इन तीनों भाषाओं में जैन विद्वानों ने प्रचुर रचनाएँ बनायी हैं। वैसे कुछ रचताएँ सिन्धी, मराठी की बँगला आदि अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी जैनों की रचित प्राप्त हैं। हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में तो लाखों श्लोक परिमित गद्य और पद्य की जैन रचनाएँ प्राप्त हैं एवं प्राचीनतम रचनाएँ जैनों की ही प्राप्त हैं।

कथाओं का भंडार जैन-साहित्य--

लोकभाषा की तरह लोककथाओं और देशी संगीत को भी जैनों ने विशेष रूप से अपनाया। इसीलिए लोककथाओं का भी बहुत बड़ा भंडार जैन साहित्य में पाया जाता है। और लोकगीतों की चाल था 'तर्ज' पर हजारों स्तवन, सझाय, ढ़ाल आदि छोटे-बड़े काव्य रचे गये हैं। उन ढाल आदि के प्रारम्भ में किस' लोकगीत की तर्ज पर इस 'गीत' रचना को गाना चाहिए, इसका कुछ उल्लेख करते हुए उस लोकगीत की प्रारम्भिक कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत कर दी गई हैं जिससे हजारों विस्मृत और लुप्त लोकगीतों की जानकारी मिलने के साथ-साथ कौनसा गीत कितना पुराना है, इसके निर्णय करने में भी सुविधा हो गई है। इस सम्बन्ध में मेरे कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

एक-एक लोककथा को लेकर अनेकों जैन रचनाएँ प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी आदि भाषाओं में जैन विद्वानों ने लिखी हैं। इससे वे लोककथाएँ कौनसी कितनी पुरानी है, उनका मूल रूप क्या था और कब-कब कैसा और कितना परिवर्तन उनमें होता रहा, इन सब बातों की जानकारी जैन कथा साहित्य से ही अधिक मिल सकती है। उन लोककथाओं को धर्म प्रचार का माध्यम बनाने के लिए उनमें जैन सिद्धांतों और आचार विचार का पुट दे दिया गया है जिससे जनता उन कथाओं को सुनकर पापों से बचे और अच्छे कार्यों की प्रेरणा प्राप्त करे। क्योंकि कथाएँ, बालक, युवा-वृद्ध स्त्री-पुरुष सभी को समान रूप से प्रभावित करती है इसलिए जैन लेखकों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं सम्बन्धी साहित्य बहुत बड़े परिमाण में रचा है और इससे जन-साधारण के जीवन में सदाचार और नैतिकता का खूब प्रचार हुआ। जैन साहित्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें विकार वर्द्धक और वासनाओं को उभारनेवाले साहित्य को स्थान नहीं मिला। इससे लोकजीवन का नैतिक-पद ऊँचा उठा, उससे भारत का गौरव बढ़ा।

साहित्य संरक्षण में जैनों का विशिष्ट योगदान—

जैन साहित्य की एक दूसरी विशेषता यह है कि वह बराबर लिखा जाता रहा और उसकी सुरक्षा का भी बहुत अच्छा प्रयत्न किया जाता रहा। इसलिए हस्तलिखित प्रतियों के ज्ञान-भण्डार जैनों के पास बहुत बड़ी व अच्छी संख्या में सुरक्षित हैं। प्राचीन और शुद्ध प्रतियों की उपलब्धि स्वरूप ज्ञान भण्डार में एक ताड़-पत्रीय प्रति, 10वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक की ताड़पत्रीय प्रतियाँ जैसलमेर, पाटण, खंभात, बड़ौदा आदि में करीब एक हजार सुरक्षित हैं। 13वीं शताब्दी से कागज पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे। तब से अब तक की लाखों प्रतियाँ कागज की प्राप्त हैं। इनमें केवल जैन साहित्य ही नहीं है। ऐसा बहुतसा जैनेतर साहित्य भी है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। और यदि मिलता है तो भी उन जैनेतर ग्रन्थों की प्राचीन व शुद्ध प्रतियाँ जैन भण्डारों में जितनी व जैसी मिलती हैं उतनी और वैसी जैनेतर संग्रहालयो में नहीं मिलतीं। अर्थात् साहित्य के निर्माण में ही नहीं, संरक्षण में भी जैनों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। सचित्र, स्वर्णाक्षरी, गैंप्याक्षरी, पंचपाठ, त्रिपाठ आदि अनेक शैलियों की विशिष्ट प्रतियाँ बहुत ही उल्लेखनीय हैं। लेखनकला और चित्रकला का जैनों ने खूब विकास किया। इस सम्बन्ध में सौजन्य मूर्ति, महान साहित्य सेवी स्वर्गीय पूज्य विजयजी लिखित 'भारतीय श्रवण संस्कृति अने लेखनकला' नामक गुजराती ग्रन्थ बहुत ही पठनीय हैं जो साराभाई नबाब, अहमदाबाद से प्रकाशित है। भाषा विज्ञान के अध्यापन में जैन साहित्य की उपयोगिता—भाषा विज्ञान की दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि जैन मुनि निरन्तर घूमते रहते हैं और सब प्रान्तों में धर्म प्रचारार्थ और तीर्थ यात्रा आदि के लिए उनका यातायात होता रहा है। उनका जीवन बहुत संयमित होने से उन्होंने साहित्य निर्माण और लेखन में बहुत समय लगाया, इसी का परिणाम है कि अलग-अलग प्रान्तों की भाषाओं में जैन विद्वान बराबर लिखते रहे। इससे उन भाषाओं का विकास किस तरह होता गया, शब्दों के रूपों में किस तरह का परिवर्तन हुआ, इसकी जानकारी जैन रचनाओं से जितनी अधिक मिलती है जैनेतर रचनाओं से नहीं मिलती। क्योंकि एक तो वे इतनी सुरक्षित नहीं रहीं और प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की जैन रचनाएँ जिस तरह की मिलती हैं वैसी जैनेतरों की नहीं मिलतीं।

प्राकृत भाषा के दो प्रधान भेद हैं—खेरे सेनी और महाराष्ट्री। खेरे सेनी में दिगम्बर और महाराष्ट्री में श्वेताम्बर साहित्य रचा गया। इनसे अपभ्रंश और अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं की शृंखला जुड़ती है।

उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं की तरह दक्षिणी भारत की प्रमुख भाषा 'कन्नड' और 'तमिल, इन दोनों में भी जैन साहित्य बहुत अधिक मिलता है। आचार्य भद्रबाहु, दक्षिणी भारत में अपने संघ को लेकर पधारे क्योंकि उत्तर भारत में उन दिनों बहुत बड़ा दुष्काल पड़ा था। उनके दक्षिण भारत में पधारने से उनके ज्ञान और त्याग तप से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के अनेक लोगों ने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया और उनकी संख्या क्रमशः बढ़ती ही गई। आसपास के क्षेत्रों में जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ। जैन मुनि चातुर्मास के सिवाय एक जगह रहते नहीं हैं, इसलिए उन्होंने घूम-फिरकर जैन धर्म का सन्देश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन-जन में फैलाया । लोक सम्पर्क के लिए वहाँ जो कन्नड और तमिल भाषाएँ अलग-अलग प्रदेशों में बोली जाती थीं, उनमें खूब साहित्य निर्माण किया। अतः इन दोनों भाषाओं का प्राचीन और महत्वपूर्ण साहित्य जैनों का ही प्राप्त है। इस तरह उत्तर और दक्षिण भारत की प्रधान भाषाओं में जैन साहित्य का प्रचुर परिमाण में पाया जाना बहुत ही उल्लेखनीय और महत्वपर्ण है। भारतीय साहित्य को जैनों की यह विशिष्ट देन ही समझी जानी चाहिए।

विषय वैविध्य--

विषय वैविध्य की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि जीवनोपयोगी प्रायः प्रत्येक विषय के जैन ग्रन्थ रचे गये हैं। इसलिए जैन साहित्य केवल जैनों के लिए ही उपयोगी नहीं, उसकी सार्वजनिक उपयोगिता है। व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, काव्य-शास्त्र, वैद्यक, ज्योतिषि मंत्र-तंत्र, गणित, रत्न परीक्षा आदि अनेक विषयों के जैन ग्रन्थ प्राकृत, संस्कृत, कन्नड, तमिल, और राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती में प्राप्त है। इनमें से कोई ग्रन्थ तो इतने महत्वपूर्ण हैं कि जैनेतरों ने भी उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और उन्हें अपनाया है। जैन विद्वानों ने साहित्यक क्षेत्र में बहुत उदारता रखी। किसी भी विषय का अच्छा ग्रंथ कहीं भी उन्हें प्राप्त हो गया तो जैन विद्वानों ने उसकी प्रति यदि मिल सकी तो ले ली या खरीद करवाली, नहीं तो नकल करवा के भण्डार में रख ली। जैनेतर ग्रन्थों का पठन-पाठन भी वे बराबर करते ही थे। अतः आवश्यकता अनुभव करके उन्होने बहुत से जैनेतर ग्रन्थों पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। इससे उन ग्रंथों का अर्थ या भाव को समझना सबके लिए सुलभ हो गया और उन ग्रन्थों के प्रचार में अभिवृद्धि हुई। जैनेतर ग्रंथों पर जैन टीकाओं सम्बन्धी मेरा खोजपूर्ण लेख 'भारतीय विद्या' के 2 अंकों में प्रकाशित हो चुका है। जैन ग्रंथों में अनेक बौद्ध और वैदिक ग्रंथों के उदाहरण पाये जाते हैं। उनमें से कई जैनेतर ग्रंथ तो अब उपलब्ध भी नहीं होते। बहुत से जैनेतर ग्रंथों को अन्तर बनाये रखने का श्रेय जैनों को प्राप्त है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास, संस्कृति और लोकजीवन सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री जैन ग्रथों व प्रशस्तियों एवं लेखों आदि में पायी जाती है। जैन आगम साहित्य में दो-अढ़ाई हजार वर्ष पहले का जो सांस्कृतिक विवरण मिलता है, उसके सम्बन्ध में जगदीश चन्द्र जैन लिखित "जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज", नामक शोध प्रबन्ध चौखम्बा विद्या भवन-वाराणसी से प्रकाशित हुआ है, उससे बहुत-सी महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है। जैन प्रबन्ध संग्रह पट्टावलियाँ, तीर्थ मालाएँ और ऐतिहासिक गीत, काव्य आदि में अनेक छोटे-बड़े ग्रामनगरों वहाँ के शासकों, प्रधान व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। जिनसे छोटे-छोटे गाँवों की प्राचीनता, उनके पुराने नाम और वहाँ की स्थिति का परिचय मिलता है। बहुत से ऐसे शासकों के नाम जो इतिहास में कहीं नहीं मिलते, उनका जैन ग्रंथों में उल्लेख मिल जाता है। बहुत से राजाओं आदि के काव्य निर्णय में भी जैन सामग्री काफी सूचनाएँ देती है, व सहायक होती है। गुर्दावली तो बहुत महत्वपूर्ण है।

जैन साहित्य की गुणवता —

अब यहाँ कुछ ऐसे जैन ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय कराया जायगा जो अपने ढंग के एक ही हैं। इनमें कई ग्रन्थ तो ऐसे-ऐसे भी हैं जो भारतीय साहित्य ही में नहीं विश्व साहित्य में भी अजोड़ हैं। प्राचीन भारत में ज्ञान-विज्ञान का कितना अधिक विकास हुआ था और आगे चलकर उसमें कितना ह्रास हो गया, इसकी कुछ झाँकी आगे दिये जानेवाले विवरणों से पाठकों को मिल जायगी। ऐसे कई ग्रंथों का तो प्रकाशन भी हो चुका है पर उनकी जानकारी विरले ही व्यक्तियों को होगी। वास्तव में जैन साहित्य अब तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत ही उपेक्षित रहा है और बहुत से विद्वानों ने तो यह गलत धारणा बना ली है कि जैन साहित्य, जैन-धर्म आदि के सम्बन्ध में ही होगा । सर्वजनोपयोगी साहित्य उसमें नहीं है । पर वास्तव में सर्वजनोपयोगी जैन साहित्य बहुत बड़े परिमाण में प्राप्त है जिससे लाभ उठाने पर भारतीय समाज का बहुत बड़ा उपकार होगा । बहुत-सी नई और महत्वपूर्ण जानकारी जैन साहित्य के अध्ययन से प्रकाश में आ सकेगी ।

प्राकृत भाषा का एक प्राचीन ग्रन्थ 'अंगविज्जा' मुनि पुण्य विजय जी संपादित प्राकृत ग्रन्थ परिषद से प्रथम ग्रन्थाङ्क के रूप में सन् 1947 में प्रकाशित हुआ है । 1 हजार श्लोक परिमित यह ग्रन्थ अपने विषय का सारे भारतीय साहित्य में एक ही ग्रन्थ है । इसमें इतनी विपुल और विविध सांस्कृत्तिक सामग्री सुरक्षित है कि उस समय के जैनाचार्य का किन-किन विषयों का कैसा विशद ज्ञान था यह जानकर आश्चर्य होता है । डॉ.वासुदेव शरण अग्रवाल ने हिन्दी में और डा. मोतीचन्द्र ने अंग्रेजी में इस ग्रन्थ का जो विवरण दिया है, उससे इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है । निवित्त शास्त्र के 8 प्रकारों में पहली 'अंग विद्या' है । अग्रवालजी ने लिखा है कि अंग विद्या क्या थी ? इसको बतानेवाला एकमात्र प्राचीन ग्रन्थ यही जैन साहित्य में अंग विज्जा के नाम से बच गया है ।

यह अंग विज्जा नामक प्राचीन शास्त्र सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सामग्री से परिपूर्ण है । अंग विज्जा के आधार पर वर्तमान प्राकृत कोषों में अनेक नये शब्दों को जोड़ने की आवश्यकता है । मुनि पुण्य विजयजी ने जो ग्रंथ के अन्त में शब्दकोश दिया है, उसमें हजारों नाम व शब्द आये हैं जिनमें से बहुत सों का सही अर्थ बतलाना भी आज कठिन हो गया है । मुनिश्री ने लिखा है कि सामान्यतया प्राकृत वाक्यों में जिन क्रियापदों का उल्लेख संग्रह नहीं हुआ है, उनका संग्रह इस ग्रन्थ में विपुलता से हुआ है जो प्राकृत समृद्धि की दृष्टि से बड़े महत्व का है । फलादेश विषयक यह ग्रन्थ एक पारिभाषिक ग्रन्थ है । डॉ. अग्रवालजी ने इसे कुषाण गुप्त युग की सन्धि काल का बतलाया है अर्थात् यह ग्रन्थ बहुत पुराना है इस तरह के न मालूम कितने महत्वपूर्ण ग्रन्थ काल में समा गये हैं ।

प्राकृत भाषा का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है संघ दास गणि रचित 'वसुदेव हिन्डी' यह भी तीसरी और पाँचवीं शताब्दी के बीच की रचना है । इसमें मुख्यतः तो श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण और कई विवाहों का वर्णन है, पर इसमें प्रासंगिक रूप में अनेक पौराणिक और लौकिक कथाओं का समावेश भी पाया जाता है । पाश्चात्य विद्वानों और डॉ. जगदीश चन्द्र जैन तथा डॉ. सांडेसरा आदि के अनुसार यह वृहद् कथा नामक लुप्त ग्रंथ की बहुत अंशों में पूर्ति करता है । सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से इसका बहुत ही महत्व है । इस सम्बन्ध में 2 बड़े-बड़े शोध प्रबंध ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं । वसुदेव हिन्डी व मध्यम खण्ड भी असंख्य मिले हैं— प्राकृत भाषा का तीसरा उल्लेखनीय ग्रंथ है—ऋषि जैन बौद्ध और वैदिक तीनों धर्मों के हैं । अपने ढ़ग का यह एक ही ग्रंथ है । इसी तरह हरिभद्र सूरि का धूर्ताख्यान भी प्राकृत भाषा का अनूठा ग्रंथ है । ये दोनों ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं ।

भारतीय मुद्रा शास्त्र सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है 'द्रव्य परीक्षा' जिसकी रचना अलाउद्दीन खिलजी के कोषाध्यक्ष या भण्डारी खरतर गच्छीय जैन श्रावक 'ठक्कुर फेरु' ने की है । उस समय की प्रचलित सभी मुद्राओं के तौल, माप मूल्य आदि की जो जानकारी इस ग्रंथ में दी गई है, वैसी और किसी भी ग्रंथ में नहीं मिलती । ठक्कुर फेरु ने इसी तरह धातूत्पत्ति वास्तुसार गणितसार, ज्योतिषसार रत्न परीक्षा आदि महत्वपूर्ण ग्रंथ बनाये हैं । इन सबकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति की खोज मैंने ही की, और मुनि जिन विजयजी द्वारा सभी ग्रंथों को एक संग्रह ग्रंथ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित करवा दिया है । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से यह प्रकाशित है ।

संस्कृत भाषा में एक विलक्षण ग्रंथ है 'पार्श्वभ्युदय काव्य जिसकी रचना आ. जिनसेन ने की है। इसमें मेघदूत के समग्रचरणों की पादपूर्ति रूप में भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र दिया है । कालिदास के पद्यों के भावों को आत्मसात करके ऐसा काव्य यह सबसे पहले समग्र पादपूर्ति के रूप में बनाकर ग्रंथकार ने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है ।

विश्व साहित्य में अजोड़ अन्य जैन संस्कृत ग्रंथ है- 'अष्ठ लक्षी' । इसे सम्राट अकबर के समय में महोपाध्याय समय सुन्दर ने संवत् 1649 में प्रस्तुत किया था । इस आश्चर्यकारी प्रयत्न से सम्राट बहुत ही प्रसन्न हुआ । इस ग्रंथ में 'राजा नोद दते सोख्यम्' इन आठ अक्षरोंवाले वाक्य के 10 लाख से भी अधिक अर्थ किये हैं । रचियता ने लिखा है कि कई अर्थ संगति में ठीक नहीं बैठे तो भी 2 लाख शब्दों को बाद देकर आठ लाख अर्थ तो इसमें व्याकरण सिद्ध हैं ही इसीलिए इसका नाम 'अष्ट लक्षी' रखा है । यह ग्रंथ देवचन्द लाल भाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत से प्रकाशित 'अनेकार्थ रत्न मंजूषा' में प्रकाशित हो चुका है ।

सस्कृत का तीसरा अपूर्व ग्रंथ है—सप्त संधान महाकाव्य, यह 18वीं शताब्दी के महान विद्वान् उपाध्याय मेघविजय रचित है । इसमें भी ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों और श्लोक प्रसिद्ध महापुरूष राम और कृष्ण, इन संतों-महापुरुषों की जीवनी एक साथ चलती है । यह रचना विलक्षण तो है ही । कठिन भी इतनी है कि बिना टीका के सातों महापुरुषों में सजीवन प्रत्येक श्लोक की संगति बैठाना विद्वानों के लिए भी संभव नहीं होता । यह महाकाव्य टीका के साथ पत्राकार रूप में प्रकाशित हो चुका है । वैसे द्विसंधान, पचसंधान आदि तो कई काव्य मिलते हैं पर सप्तसंधान काव्य विश्वभर में यह एक ही है । ग्रंथकार ने ऐसा काव्य पहले आचार्य हेमचन्द ने बनाया था, उल्लेख किया है, पर वह प्राप्त नहीं है ।

दक्षिण के दिगम्बर जैन विद्वान हसदेव रचित, मृग पक्षी शास्त्र, भी अपने ढ़ग का एक ही ग्रंथ है । इसमें पशु-पक्षियों की जाति एवं स्वरूप का निरूपण है । इस ग्रंथ का विशेष विवरण मेरी प्रेरणा से श्री जयंत ठाकुर ने गुजराती में लिखकर 'स्वाध्याय पत्रिका' में प्रकाशित कर दिया है । इस ग्रंथ की प्रतिलिपि बड़ौदा के प्राच्यविद्या मन्दिर में है । पशु-पक्षियों सम्बन्धी ऐसी जानकारी अभी किसी भी प्राचीन ग्रंथ में नहीं मिलती ।

कन्नड साहित्य का एक विलक्षण ग्रंथ है 'भूवलय' । यह अंकों में लिखा गया है । कहा जाता है कि इसमें अनेकों ग्रंथ संकलित हैं एवं अनेकों भाषाएं प्रयुक्त हैं । इसका एक भाग जैन मित्र मंडल दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी के समय तो इस ग्रंथ के सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई थी । पर उसके बाद उसका पूरा रहस्य सामने नहीं आ सका ।

हिन्दी भाषा में एक बहुत ही उल्लेनीय रचना है 'अर्द्ध कथानक' । 17वीं शताब्दी के जैनसुकवि बनारसी दासजी ने अपने जीवन की आत्मकथा बहुत ही रोचक रूप में इस ग्रंथ में दी है इस आत्मकथा की प्रशंसा श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने मुक्त कंठ से की है । इस तरह के और भी अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ जैन साहित्य-सागर में प्राप्त हैं, जिससे भारतीय साहित्य अवश्य ही गौरवान्वित हुआ है । वास्तव में इस विषय पर तो एक स्वतंत्र ग्रंथ ही लिखा जाना अपेतिक्ष है । यहाँ तो केवल संक्षिप्त झाँकी ही दी है

* * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org